संदीप तोमर

ई-मेल-gangdhari.sandy@gmail.com

समाधान

कहते हैं मुसलमान बादशाह बनने से पहले वहाँ भव्य मंदिर था। मुसलमान शासक ने उसे गिराकर आलीशान मस्जिद बनवा दी। मुसलमान शासक के शासन का खात्मा हुआ तो लोगों ने वहाँ फिर से मंदिर बनाने की गरज से मस्जिद को तोड़ डाला।

एक दीगर बात ये थी कि न मुसलमान को वहाँ इबादत में दिलचस्पी थी न ही हिन्दू को पूजा-अर्चना में। यह अहम और वहम का मसला था।

मामला पेचिंदा हुआ, मंदिर बनाने के लिए जनमत था लेकिन कानून की अड़चन थी।

दोनों पक्ष के लोग बुद्धिजीवी के पास गए, बोले- "आप समझदार हैं कानून से भी बेहतर समाधान सुझा सकते हैं।"

बुद्धिजीवी ने कहा, "तुम दोनों ही पक्ष न वहाँ इबादत कर पाएँगे, न ही पूजा-अर्चना, एक काम क्यों नहीं करते- वहाँ तालीम यानि शिक्षा-दीक्षा की संस्था मिलकर खड़ी कीजिये, आने वाली पुश्तें तो आपस में नहीं लड़ेंगी।"

दोनों ही पक्ष के लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

पूरन सिंह

ई-मेल-:drpuransingh64@gmail□com

लूडो

उन दिनों ऑफिस नहीं जाते थे वे दोनों; और न ही उनके बच्चे अपने-अपने स्कूल जाते थे। करोना काल था। खाली समय में वे चारों लूडो खेला करते। सुमद्रा अपने पति और बच्चों से रोज जीतती। बच्चे तो मजे लेते; लेकिन सुमद्रा का पति उखड़ जाता। कई बार कहता, "हर रोज तुम्हीं कैसे जीत जाती हो। कहीं बेईमानी तो नहीं कर लेती।"

"हे सुनो, हम औरतें बेईमान नहीं होती। बेईमान तो तुम लोग...।" मजाक-मजाक में पुरुष का यथार्थ परोस देती थी सुमद्रा। उसका पति तिलमिला जाता। सुमद्रा सब समझ जाती। फिर उसने एक तरीका निकाला। वह जानबूझकर गलत चालें चलने लगी और उसका पति जीतने लगा। स्थिति यहाँ तक आयी कि वह बच्चों से भी हारने लगी। हारना ही स्त्री ने अपनी नियति बना ली। उसका पति अब बहुत खुश रहता। वह, उसे देखकर कई बार सोचती, "ये खुश हैं, इससे ज्यादा मुझे और क्या चाहिए।"

तभी। तभी एक दिन, सुमद्रा के पति ने सुमद्रा से पूछ ही लिया था, "क्या बात है आजकल तो तुम रोज ही हार जाती हो, लगता है, लूडो खेलना भूल गई हो। मुझे देखो मैं रोज जीतता हूँ।"

"और मुझे जो लगता है, वह यह है कि अगर ज्यादा दिन तक मैं जीतती रहती तो...संभव था कि तुम्हें हार जाती।" न जाने कब उसके मुँह से निकल गया था।